दी नेहु जर्नल, वर्ष : ५, संख्या : १ व २, २००७

अरुणाचल प्रदेश के लोक-नृत्य

डॉ. विनोद कुमार मिश्र

भारत के उत्तर पूर्व में अवस्थित, सूर्योदय-भूमि के नाम से विख्यात अरुणाचल प्रदेश घने वनों, सुरम्य पर्वत घाटियों तथा हिम से आच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं के कारण पूर्वोत्तर भारत में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । सुन्दर वन्य प्राणियों, हरे भरे जंगलों तथा नदियों झरनों की कल-कल छल-छल ध्वनि ने इस पर्वत प्रदेश की भूमि को तपः पूत मनीषी की साधना स्थली बना दिया है । समृद्ध संस्कृति तथा उन्नत लोककलाओं ने इस प्रदेश की अनूठी पहचान बनायी है । क्यों न हो ? संसार के किसी भी भाग की पहचान वहीं की परम्परा व संस्कृति से होती है । परम्परा और संस्कृति लोककलाओं से जानी जाती है । जहाँ की जितनी ही उन्नत लोक कलाएँ होगी वहाँ की परम्परायें और संस्कृति भी उतनी ही अक्षुण्ण होगी ओर लोक और तंत्र के बीच के रिस्ते को मधुरता, मजबूती प्रदान करने में इन लोक कलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । दुर्भाग्यवश लोकतंत्र से लोक की ही उपेक्षा होती रही है जिसके परिणामस्वरूप लोकसंस्कृति, लोक साहित्य, लोककलाएँ तथा कथित शिष्ट संस्कृति, साहित्य एवं कला के सामने अछूत बनी रही । लेकिन तेजी से हम अपने अतीत की गहराइयों में झाँकने लगे हैं । अतीत की मानवीय संवेदनाओं से उपजी लोककलाएँ अपना खोया हुआ सम्मान वापस पाने में कामयाब होने लगी है । अरुणाचल प्रदेश की लोककलाएँ भी अपनी पहचान राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बनाने की दिशा में अग्रसर हो चुकी है । अरुणाचल प्रदेश के स्वतःस्फूर्त लोकनृत्यो में ''कला कला के लिए'' की सुखद भावना का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है । अपने मौलिक स्वरूप में उत्कृष्ट् प्रदर्शन के लिए इस प्रदेश के लोक नृत्य दशकों से दर्शकों की चाहत के केन्द्र में रहे है ।

अरुणाचल प्रदेश जनजातीय बहुल प्रदेश है । यहाँ लगभग २५ मुख्य जनजातियाँ निवास करती है । दस लाख की तादात में ये जनजातियाँ १६ जिलों एवं हजरों किलोमीटर में फैली हुई है । इस प्रदेश की सबसे बड़ी विशेषता रही है कि इस विशाल भूभाग की सभी प्रमुख जनजातियों में, भाषा, संस्कृति, रहन-सहन में वैविध्य होने पर भी एक ताने बाने में बुनी हुई है । यही भारतीय संस्कृति की विशेषता भी रही है । अनेकता में एकता के सुखद दर्शन इन जनजातियों की लोककलाओं में होते है । अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय नृत्य व्यापक रूप से चार भागों में विभाजित है । प्रथम पूजापाठ से जुड़ा हुआ है जो प्रमुख त्योहारों के अवसर पर पुरोहित या पुजारी द्वारा देवी देवताओं के आह्वान, उनकी पूजा, आराधना के लिए किया जाता है । प्रथम समूह पुनः पाँच उप भागों में बँटा होता है । प्रथम उपसमूह में नृत्यों को शामिल किया जाता हे जिसमें नृत्य-कर्ता के धन-धान्य एवं समृद्धि के लिए किया जाता है । दूसरे उपसमूह का नृत्य उत्सव से संबंधित होता है जिसमें कृषि जानवरों के पालन पोषण एवं उनकी समृद्धि तथा अच्छी फसलों के पैदावार शामिल होती है । तृतीय उपसमूह के अन्तर्गत वे नृत्य शामिल किये जाते है जिसमें अंतिम संस्कार के समय मृत आत्मा की शांति एवं उसके द्वारा अपने पुराने घर से बचाने एवं नये घर में प्रवास के

लिए पुजारी द्वारा नृत्य के माध्यम से किया जाता है । ऐसा मानना है कि मृतात्मा अपने पुराने घर में वापस आती है और वहाँ के लोगों को बीमारी, मृत्यु एवं अन्य प्रकार के दुख देती है । इसलिए पुरोहित की मदद से नृत्य के द्वारा उसे प्रसन्न कर उसके नये कब्र के घर में स्थापित करा दिया जाता है ताकि वहाँ से वापस आकर पुराने घर में कोई नुकसान न पहुँचा सके । चौथा नृत्य मैथुन या रति क्रिया के अभिनय के द्वारा सन्तानोपत्ति की दर को बढ़ाने के लिए किया जाता है । इनका मानना है इस तरह की रतिक्रिया या मैथुन क्रिया की अनुकरणात्मक अभिनेयेता से जन्मदर में बढ़ोतरी होगी । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य हे कि यहाँ अभी भी कुछ जनजातियाँ ऐसी है जिनकी समूची जनसंख्या कुछ हजार में ही है । पाँचवा महत्त्वपूर्ण उपसमूह युद्ध नृत्य के रूप में जाना जाता है । आन्तरिक कलह से युद्ध के बाद जब विजेता वापस आते थे तो जीत का जश्न मनाया जाता था । इस नृत्य के द्वारा प्रार्थना की जाती है ताकि मृत आत्मा मरने वाले वीर योद्धा को आकर कोई नुकसान न पहुँचा सके । इदुमिशमी जनजाति में तो मारे गये व्यक्ति के परिवार के लोग भी उस नृत्य मे शामिल होते हैं । कुछ जनजातियों में तो यह नृत्य उस समय भी किया जाता है जब कोई शेर मारा जाता है । इस नृत्य का भी उद्देश्य यही होता है कि शेर की मृत आत्मा शेर की हत्या करने वाले को कोई नुकसान न पहुँचा सके । यह युद्ध नृत्य बौद्ध अनुयायी जनजातियों को छोड़कर प्रायः सभी जनजातियों में प्रचलित है और वे जनजातियाँ बड़े चाव से इस युद्ध नृत्य समूह मात्र मनोरंजन के लिए होता है जिसका संबंध पूजा-पाठ, उत्सव या त्यौहारों से दूर-दूर तक नहीं होता है । यह नृत्य उस समय किया जाता है जब इसके करने वाले इस नृत्य के माध्यम से अपने आनन्द का इजहार करते है । अपनी खुशी एवं आनन्द को इस नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत कर नृत्यकर्त्ता या नृत्यांगना अपनी खुशी एवं आनन्द को शरीर की विभिन्न भावभंगिमा के प्रदर्शन से व्यक्त करते हैं और अपने आह्लादकारी नृत्य से सब का मन मोह लेते हैं । चौथा समूह मूक अभिनय एवं नृत्यनाटिका से संबंधित है जिसके द्वारा पौराणिक कथा या नैतिक कथा को प्रदर्शित किया जाता है । इस प्रकार के नृत्य शिक्षाप्रद होते हैं । बौद्ध जनजातियों के पास इस प्रकार के पौराणिक कथाओं का खजाना है जो उनकी इस लोककला को समृद्धशाली एवं गौरवशाली बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है ।

इन लोक नृत्यों के उद्भव से संबंधित अनेक काल्पनिक एवं पौराणिक कथाएँ विद्यमान है। तांग्सा, सिंगफो, आपातानी, हिलमिरी, तागिन, मोन्पा और शेरदुकपेन जनजातियाँ विशेष रूप से इन कपोलकल्पित एवं पौराणिक कथाओं से सुसम्पन्न है । तांग्सा एवं सिंगफो जनजाति के लोगों ने नृत्य की विद्या बन्दर एवं सूर्य, चन्द्रमा के घर से सीखा। आपातानी, हिलमिरी ओर तांग्सा जनजाति युद्ध नृत्य के उद्भव को व्याख्यायित करते हैं । शेरदुकपेन विश्वास के अनुसार अजिलामू मूक अभिनय के द्वारा हर ललचायी हुई औरत के बचाव के लिए इस नृत्य का उद्भव हुआ । मोन्पा जनजाति का विश्ववास है कि अजिलामू मूक अभिनय का उद्भव दो गाँवों को जोड़ने के लिए नदी पर पुल बनाने के लिए हुआ । एक कथा के अनुसार मोनास्टिक नृत्य पहली बार बौद्ध बिहार के निर्माण के लिए किया गया था ।

खामती, खाम्पा, मेम्बा, मोन्पा, शेरदुकपेन अपने मूक अभिनय एवं नृत्य नाटिका का विधिवत आयोजन करते हैं जिसके द्वारा सदस्यों को नियमित नृत्य एवं अभिनय की शिक्षा दी जाती है ।

दूसरी जनजातियों में इस तरह की कोई परम्परा का परिचय नहीं मिलता है । इन जनजातियों के लड़के एवं लड़कियाँ अपने बड़ों के नृत्य की नकल करके नृत्य सीखते है ओर दूसरे सीखने के तरीके या प्रशिक्षण का कोई प्रावधान नहीं होता है । केवल पैरों की गति की नकल करके सीखा जाता है । बौद्ध जनजाति के लोग कूक (अभिनय नृत्य) प्रस्तुत करते समय सुन्दर देदीप्यमान मुखौटा एवं रंग बिरंगी पोशाकें पहनते हैं। आदी जनजाति के महत्वपूर्ण त्यौहार सोलुंग के अवसर पर पोनुंग नृत्य की प्रस्तुति की जाती है । आदी जनजाति की पादम उपजनजाति में मीरी इस नृत्य का नेतृत्व करता है। वह लाल रंग का स्कर्ट सीने पर छोटी घंटियों के दो गुच्छे, सिर के पीछे डमलिंग धारण करता है । डमलिंग एक आभूषण है जो फूल जैसा लगता है । मिनियांग उपजनजाति में लोग पोनुंग नृत्य की प्रस्तुति के समय मीरी अपने सामान्य पहनावे के अतिरिक्त लाल स्कर्ट और सिर के पीछे डमलिंग माला धारण करता है ।

दिगारु जनजाति के लोग नुइया लोकनृत्य की प्रस्तुति करते है । उस मसय माथे पर सजा हुआ बैण्ड, कौड़ियाँ हार जिसमें शेर के दाँत मढ़े हुए होते हैं तथा कुछ धातुओं की बनी पत्तियाँ धारण करते है । युद्धनृत्य के समय अधिकांश जनजातियाँ युद्ध वस्त्र धारण करती है । इनमे वान्चू एवं नोक्टे जनजाति के लोग अनेक रंगो की यानि गुरिया बीडस, जंगली सूअर के नुकीले दाँत, धनेश पक्षी के पंखे, कौड़ियाँ, सिक्के, रंगे हुए बकरी के केश से सुसज्जित वस्त्राभूषण में युद्धनृत्य का मनमोहक नृत्य प्रस्तुत करते है ।

वान्चू, नोक्टे, पादम, मिनियांग, गालो जनजाति के लोग नृत्य के समय कोई वाद्य यंत्र का प्रयोग नहीं करते हे किन्तु सिंफो, आपातानी, नीशी, तागिन और हिमिरी घण्टा घड़ियाल बजाते हैं। लोंवांग, पोन्थाइ, सबन एवं मोगलुम उपजनजाति के लोग नृत्य के समय घण्टा घड़ियाल के साथ ढोल भी बजाते हैं । मोन्पा, शेरदुकपेन, खोवा, मीजी तथा आका जनजाति के लोग ढोल के साथम जीरा बजाकर अपने पारंपरिक नृत्य की प्रस्तुति करते है । खाम्पा, मेम्बा मूक अभिनय की प्रस्तुति के समय ढोल मजीरा, दुंदुभी, शंख इत्यादि बजाकर नृत्य को और जीवन्तता प्रदान करते है । दिगारू मिशमी एवं मिशमी जनजाति के नर्तक एवं नर्तकी भी ढोल मजीरा, दुंदुभी, तुरही एवं कभी कभी सींग से बनी तुरही का वादन कर अपनी नृत्य प्रस्तुति में चार चाँद लगा देते हैं । इनके मनमोहक नृत्य देखने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती हैं । पूरा वातावरण संगीतमय और उत्सवमय हो जाता है । प्रकृति नृत्य के रस में आकण्ठ डूब कर इस खूबसूरत पल का आनन्द देती है । प्रकृति की गोद में बैठे ये जनजातीय कलाकार अपनी नृत्यकला से जनमानस का मन मुग्ध कर देते हैं ।

वर्तमान शासन व्यवस्था के पहले यहाँ की जनजातियाँ आपस में मिलती जुलती नहीं थी । आपसी वैमनस्य एवं मनमुटाव युद्ध के रूप में परिणत हो जाते थे । लेकिन वर्तमान शासन व्यवस्था इन जनजातियों को एक दूसरे के करीब लाने में सफल रही है । जिससे इनके विकास के कार्यों में गति आयी है । एक दूसरे के करीब आने से सांस्कृतिक आदान प्रदान से सुअवसर मिले, फिर ये जनजातियाँ एक दूसरे की लोककलाओं को सीखने के लिए उद्यत हो गयीं । आज ये एक दूसरे के नृत्य को अपनाकर जातीय एकता एवं गौरव का मार्ग प्रशस्त किये हुए हैं । ये तिब्बत के लोकनृत्य को भी अपनाने में पीछे नहीं रहे । चीन का तिब्बत पर अधिकार के बाद वहाँ से बड़ी

संख्या में आये शरणार्थी अपने साथ अपनी लोककलाएँ एवं संस्कृति लेकर यहाँ आये और यहाँ के विशेष रूप से तवांग एंव बोमडिला के लोगों ने इनकी लोककलाओं को पूरी तरह से आत्मसात कर इन्हें एक नया स्वरूप ही दे दिया है । आज ये यहाँ की धरोहर बन चुकी है ।

अरुणाचल प्रदेश के लोकनृत्य इन तमाम विशेषताओं के कारण, लोकमंगल के भाव से एक प्रदेश को ही नहीं, पूरे विश्व की चर अचर प्रकृति को परस्पर सूत्र में पिरोने में प्रेरक का कार्य करते रहे हैं । आज इसकी उपादेयता एंव प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गयी हैं । तमाम वैश्विक विसंगतियों के बीच भी हमारा लोक मन लोकनृत्य के प्रति अपनी अटूट आस्था के सहारे आशा भरी नजरों से देख रहा है । ये लोकनृत्य बिखरते सूखते मन एवं प्राणों को स्नेह, संवेदना, माधुर्य करुणा एवं ओज से रससिक्त ही नहीं करते वरन सराबोर करने के लिए नृत्य का अमृत कलश लिए छलकने एवं छलकाने को तैयार है । लेकिन विडम्बना देखिए हम प्यासे होकर भी इधर उधर भटकने का अविवेक लिए फिर रहे हैं ।

आज आवश्यकता ऐसे चिन्तकों एवं अन्वेषकों की है जो नये समाज एवं युग की चुनौतियों का मुकाबला करते हुए इन जनजातीय लोककलाओं के संरक्षण की दिशा में सार्थक पहल करें । अन्यथा इस प्रदेश की जनजातीय पहचान संकट में पड़ जायेगी । एक ओर आधुनिकीकरण की अनिवार्यता तो दूसरी ओर परम्परा के आग्रह, पश्चिमी नृत्य संगीत की चकाचौंध एवं इसका अंधानुकरण आज एक चिन्ता को जन्म दे रही है । अपनी लोककलाओं की अस्मिता की रक्षा कैसे की जाय ? यद्यपि प्रगति, प्रयोग एवं परम्परा के समन्वय के प्रयत्न एवं उनके परिणाम हास्यास्पद रहे हैं तथा हमारी लोककलाएँ लुप्त हो रही है । उनपर चहुमुखी प्रहार हो रहा है । जिससे उनकी सामूहिकता की भावना पर चोट पहुँच रही है । सदियों से अरुणाचली जनजातियों ने अपनी लोककलाओं - जिसमें इनके प्रमुख लोकनृत्य है, को सहेज कर रखा है । आज उनकी पहचान खतरे में पड़ जाय यह कहीं से भी जायज नहीं है । ये लोकनृत्य सम्पूर्ण परिवेश को मनुष्य का रूपान्तर मानते है । यहाँ प्रकृति जड़वस्तु नहीं है, बल्कि जड़ में भी चेतना के विस्तार का विश्वास है । इनके केन्द्र में मनुष्य है, जिसमें शक्ति और करुणा दोनों का उद्‌भव सामंजस्य है ।

अरुणाचली जनजातीय नृत्य परिवेश या प्रकृति का निरीक्षण खुली आँखों से करता है और तब आँख बंदकर उसे कल्पना और सपनों में भरता है । वह ऋतु मंगल मनाता है । जीवन की हर भावना को प्रकृति के सादृश्य से अभिव्यक्त करना लोकनृत्य की अपनी विशिष्ट भंगिमा है ।

अब समय आ गया है कि प्राचीन वैदिककाल से चली आ रही नृत्य परम्परा जो लोकसंस्कृति का अहम हिस्सा है तथा लोकसंस्कृति जिस मानवीय परिवेश और जीवन मूल्यों की चिन्ता करती है, वह आज समूचे संसार की चिन्ता है । अतः सर्वप्रथम यह स्पष्ट होना चाहिए कि लोकसंस्कृति एवं इसकी आत्मा में शामिल लोककलाएँ कोई वस्तु या साहित्य नही है जिसे संग्रहालयों में सुरक्षित रखा जाय । यह जीवन्त सत्य है जो समाज के साथ भी बराबर बना रहता है । उसे व्यवहार में बनाये रखने एवं उसकी सुरक्षा की पुरजोर कोशिश होनी चाहिए । इसी में समाज का हित निहित है । इसके प्रति सद्‌भावना आदि का भाव नारा बनकर न रह जाय । यह हमारी संतति में उतरे उसके लिए आवश्यक है, कि हम लोकनृत्य के अथाह सागर में उतर कर उसके अनमोल मोती प्राप्त कर के भावी पीढ़ी को सौंप सके । तभी जाकर लोककलाओं के संरक्षण के प्रति अपनी

प्रतिबद्धता एवं वचनवद्धता को कायम रख सकेंगे ।

संदर्भ सूची :

१. मिथ्स ऑफ नार्थ ईस्ट फ्रण्टियर ऑफ इण्डिया : वेरियर एल्विन, १९९१
२. ए फिलॉस्फी फॉर नेफा - वेरियर एल्विन
३. अरुणाचल की जनजातियाँ और ऐतिहासिक स्थान - डॉ. धर्मराज सिंह
४. मनोरम भूमि अरुणाचल : श्री माता प्रसाद
५. द वण्डर दैट वाज इण्डिया - ए. एल. बासम, १९६४
६. डांसेज़ ऑफ अरुणाचल प्रदेश : निरंजन सरकार, १९७४

रीडर
हिन्दी विभाग
डेरा नाटुङ सरकारी महाविद्यालय
ईटानगर